International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(6): 41-43

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(6): 41-43
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 25-07-2015
Accepted: 28-08-2015

डॉ. कौशल्या शर्मा
व्याख्याता (संस्कृत), से.मु.मा.राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. कौशल्या शर्मा
व्याख्याता (संस्कृत), से.मु.मा.राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

धार्मिक समन्वयवादः नागानन्द नाटक के संदर्भ में

डॉ. कौशल्या शर्मा

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को गति प्रदान करने वाला भी धर्म ही है। आदिम युग से ही मानव ने धर्म को एक अवलम्ब के रुप में ग्रहण किया है। धर्म समाज की निर्णायक सत्ता रहा है, इसने मानव की समाज विरोधी प्रवृत्तियों पर अंकुश रखा है। धर्मरक्षार्थ आदिकाल में युद्ध किये गये। गौतम बुद्ध, मुहम्मद साहब, ईसामसीह ने धर्म को आधार बनाकर ही विश्व में आमूल–चूल परिवर्तन किया।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से धर्म शब्द 'धृधारणे' धातु से मप् प्रत्यय लगकर निष्पन्ना होता है, जिसका अर्थ है– धारण करने वाला। इस अर्थ में धर्म का प्रयोग ऋग्वेद में ''अतो धर्माणि धारयेन्''[1] के रुप में हुआ है। वैदिक धर्म मुख्यतः समाज प्रधान था। इसका मूल मन्त्र 'संगच्छध्वं संवदध्वं''[2] अर्थात् साथ चलो, साथ बोलो रहा है।

महाभारत में धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि मानी गई है– ''धर्मार्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते''।[3] कणाद ने वैशेषिक दर्शन में लोक–परलोक दोनों के साधक तत्त्व के रुप में धर्म की परिभाषा दी हैः–

> ''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[4]

जैमिनि के मत में वेद से बोधित होने पर साक्षात् या फल द्वारा जो अनर्थ से परे एवं इष्ट को सिद्ध करने वाला हो, वही धर्म है– ''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः''। धर्म के लक्षणों में सर्वप्रथम 'धृतिः' को स्वीकार किया है।

> ''धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
> धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[5]
> ''वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
> एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।''[6]

यहां 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' से मधुर भाषण, परोपकार, अहिंसा का ग्रहण किया जाता है। मनु का यह द्वितीय लक्षण नीति के अधिक निकट है। कालिदास ने भी समाज के अभ्युदय के लिए या उसकी रक्षा एवं कल्याण के लिए धर्म की आवश्यकता स्वीकार की है।

कालान्तर में धर्म का यह स्वरूप परिवर्तित हुआ। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही धर्म समाज–परक न होकर व्यक्ति–परक होने लगा। परम्परागत धर्म मूल्यों में परिवर्तन दिखाई दिया। अब वैदिक घोष के स्थान पर बुद्ध का स्वर गूंजने लगा– ''दो भिक्षु एक मार्ग से न जायें।'' जैन धर्म में भी एकल विहारी साधू को सर्वोत्तम स्वीकार किया।

तत्कालीन परिस्थियिों के अनुकूल श्री हर्ष ने नाटक में वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में समन्वय का प्रतिपादन किया है। इतिहासवेत्ताओं का मत है कि हर्ष के राज्य–काल में भारतीयों की वैदिक धर्म पर बहुत बड़ी श्रद्धा थी, किन्तु उस समय बौद्ध धर्म का भी सार्वत्रिक प्रचार हो चुका था। जीमूतवाहन तो बोधिसत्व ही था। इसी बोधिसत्व की कथा को आश्रय करके श्री हर्ष ने नाटक की रचना की। चीनी यात्री इत्सिंग का कथन इस विषय में प्रबलतम प्रमाण है–

"King siladitya (i.e. Harsa) versified the story of Bodhi Sattya Jimuta Vahana (Lit. Loud. borne)who surrendered himself in place of a Naga. This version was set to music (lit. string and pipe). He had performed it by a band accompanied by dancing and acting and thus

popularised it in his time"[7] अर्थात् सम्राट शीलादित्य (हर्ष) ने जीमूतवाहन (बोधिसत्व) की कथा को पद्यों में उपनिबद्ध किया, जिसने एक नाग के स्थान पर अपने को समर्पित कर दिया था। उसने उसे संगीत में लाकर नृत्य और अभिनय के द्वारा प्रदर्शित कराया और अपने जीवन–काल में ही प्रसिद्ध कर दिया।

कवि ने नाटक के प्रारम्भ में शिष्टानुमोदित मंगलाचरण में गौमबुद्ध का ही स्मरण किया है, जिसमें गौतमबुद्ध की समाधि में अचल निष्ठा दिखाते हुए उनके जीवन की प्रमुख घटना 'मार–विजय' की ओर निर्देश किया है। इसका विस्तृत वर्णन 'ललित विस्तर' तथा बुद्ध चरित के तेरहवें सर्ग में विस्तार से मिलता है। कवि की बुद्ध के प्रति भक्ति–भावना निम्न शब्दों में व्यक्त हुई है –

''ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानंगशरातुरं जनमिमं त्राताद्यपि नो रक्षसि।
मिथ्याकासणिकोद्यसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोद्यन्यः पुमान्,
सेव्यं मारवधूभिरियमभिहितो बोधौ जिनः पातुः वः।।
कामेनाकृष्य चापं हतपटुपटहावल्गिभिर्मारवीरै–
भूभंगोत्कम्प जृम्भास्मित चलित दशा दिव्यनारीजनेन।
सिद्धैः प्रह्वोत्तमांगैः पुलकितवपुषा विस्मयाद् वासवेन,
ध्यायन् बोधेरवाप्तावचलित इति वः पातुः दृष्टोमुनीन्द्रः।।''[8]

बाणभट्ट के हर्ष चरित में भी उल्लेख मिलता है कि सम्राट् से बाण मिलने गये तब एक स्थान पर बौद्ध और जैनों को बैठे हुए देखा था, जिससे विदित होता है कि सम्राट् ने इन दोनों को आश्रय प्रदान किया था। किन्तु जैनियों के सम्बन्ध में लोगों में अधिक सम्मान की धारणा नहीं थी। बौद्धों के प्रति सर्वत्र सम्मान का भाव प्रदर्शित है। स्वयं बाण ने हिन्दू होते हुए भी बौद्ध धर्म के प्रति आदरभाव दिखाया था, जिसका पता राज्यश्री की सखी के बौद्ध भिक्षु के प्रति इस कथन से चलता है–

''भगवन्, सर्वसत्वानुकम्पिनी प्रायः प्रवृज्या।
..... भवन्ति सोगताः।।[9]

श्री हर्ष के सभा पण्डित दिवाकर मित्र आरम्भ में यजुर्वेद की मैत्रायिणीय शाखा के विद्यार्थी थे, किन्तु बाद में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने पर भी वह लोगों के सम्मान के पात्र बने रहे।

वैदिक देवता इन्द्र, कुबेरादि का स्थान ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने ले लिया था। वर्तमान काल की भांति हिन्दूधर्म के विविध अंगों शैव, शाक्त, वैष्णवादि में पारस्परिक विरोध नहीं था। एक ही कुटुम्ब में विविध देवताओं की उपासना चल रही थी, कोई किसी का विरोधी न था। स्वयं हर्ष के कुल में भी हर पीढ़ी के व्यक्ति एक ही मत के अवलम्बी नहीं थे। हर्ष के पूर्वज सम्राट् पूष्पभूति शैव थे, किन्तु हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन सूर्य के उपासक थे। सम्राट् हर्ष जीवन के पूर्वार्द्ध में शिव के भक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि दिग्विजय के लिए उन्होंने प्रस्थान किया तो शिव की पूजा करके किया था।''

श्री हर्ष ने नायक के माध्यम से अपने धर्म के प्रति उदारता की अभिव्यक्ति करवाई है कि– ''वन्द्याः खलु देवताः।''[10] देवताओं की वन्दना अवश्य करनी चाहिए वे चाहे किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हो , सभी के द्वारा पूज्य हैं। 'सर्वदेव–नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति'' सिद्धान्त का प्रतिपादन उपर्युक्त वाक्य में हुआ है।

नायिका मनोकामना की सिद्धि के लिए भगवती गौरी को वीणा वादन करती हुई वन्दना करती है–

''उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि !
अभिवांछितं प्रसिध्यतु भगवति ! युष्मत्प्रसादेन।।''[11]

चेटी के माध्यम से कवि ने ऐसे व्यक्तियों के विचारों का प्रतिपादन किया है, जो कि इष्ट सिद्धि नहीं होने पर आराध्य को निष्करुण मानने लगते हैं, उपासना को अधूरा ही छोड़ देते हैं। वह नायिका से भी कहती है कि इतने लम्बे समय से आराधना करने पर भी जो अब तक प्रसन्न नहीं हुई उसकी उपासना क्यों करती हो– ''भर्तृदारिके ! ननु भणामिकिमेतस्या निष्करुस्सणायाः पुरतो वादितेन ! या एतावन्तंकालं कन्टकाजनदुष्करैर्नियमोपासनैराराधयन्त्या अद्यापि न ते प्रसादं दर्शयति।''[12]

चेटी नायिका के हाथों से वीणा खींच लेती है, और कहती है कि क्या तुम्हारे हाथ थकते नहीं हैं ? नायिका की गौरी के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। उसकी मान्यता है कि देवी की उपासनार्थ वीणावादन, वीणावादन में हाथों का परिश्रम नहीं होता है– ''हंजे ! कुतो मे देव्याः पुरतो वीणांवादयन्त्या अग्रहस्तयोः परिश्रमः।'' चेटी के द्वारा वीणा आक्षेप कर लिये जाने पर नायिका कहती है– ''मा भगवतीं गौरीमधिक्षिपत। नन्वद्य कृतो मे भगवत्या प्रसादः।''[13]

नायिका को पूरा विश्वास है कि उसकी आराध्या देवी कभी प्रसन्न होकर अभीष्ट सिद्धि करेगी। उसके इस विश्वास में इस शाश्वत मूल्य की अभिव्यक्ति हुई है कि भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर प्रसाद अवश्य रूपेण देता है। भक्त की आराधना, उपासना निरर्थक नहीं होती है। उपास्य देव प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से भक्त को दर्शन देता है तथा मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान देता है। नायिका को स्वप्न में भगवती गौरी ने वरदान दिया था, जिसे अपनी सखी को सुनाती है– ''वत्से मलयवति ! परितुष्टाद्यस्मि तवैतेन वीणाविज्ञानातिशयेन, अनया च बालजनदुष्करया असाधारणया ममोपरि भवत्या ! तद्विद्याधर चक्रवर्ती अचिरेणेव ते पाणि ग्रहणं निर्वेत्तयिष्यति।''[14]

भगवती गौरी के वरदान के फलस्वरूप मलयवती का जीमूतवाहन के साथ विवाह सम्पन्न हो जाता है, किन्तु उसके चक्रवर्ती बनने से पूर्व ही वह नागरक्षणार्थ गरुड़ के द्वारा क्षत–विक्षत कर दिये जाने के कारण प्राण त्याग देता है। तब मलयवती पुनः गौरी से ही उपालम्भपूर्वक निवेदन करती है कि क्या आप भी मेरे लिए मिथ्या भाषिणी बन गई है– ''भगवति गौरि ! त्वया आज्ञप्तं, यथा– ''विद्याधरचक्रवर्ती भर्ता ते भविष्यति,'' तत् कथं मम मन्दभाग्यायाः कृते त्वमप्यलीकवादिनी संवृत्ता''[15] ?

किन्तु देवता या देवी अपनी भविष्यवाणी के वचनों को निभा नहीं सके तो मनुष्यत्व और देवत्व में अन्तर ही क्या रह जाये ? अमोघदर्शना भगवती गौरी अपने कमण्डलु के जल से छींटे देती हुई मलयवती को उद्देश्य कर कहती है– ''वत्से ! कथमहमलीकवादिनी भवेयम्।''[16]

नायक देवी की कृपा से जीवित होकर प्रणाम करता है– ''अभिलषिताधिकवरदे! प्रणिप्रतितजनार्त्तिहारिणि! शरण्ये ! चरणौ नमाम्यहं से विद्याधरदेवते ! गौरी !''

भगवती गौरी की कृपा जीवन प्रदान तक ही सीमित नहीं है। वह अपने वचनों के अनुसार उसे क्षण भर में ही चक्रवर्ती बना देती है– त्वां विद्याधर चक्रवर्त्तिनमहं प्रीत्या करोमि क्षणात्।'' स्वर्गचक्र, श्वेतगज, श्यामवर्ण का घोड़ा, मलयवती, चारों रत्नों को देकर, प्रतिद्वन्द्वी (विद्याधरों के अधिपति) मतंगदेवादि को अपनी प्रेरणा से जीमूतवाहन को नतमस्तक करवाती है और पूछती है कि और भी क्या प्रिय करूं – ''तदुच्यतां, किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।''

नायक गौरी के सम्मुख घुटने के बल बैठकर कहता है कि क्या इससे भी अधिक कोई प्रियवस्तु हो सकती है– ''अतः परमपि प्रियमस्ति ?

त्रातोद्यमयं शंखचूड़ः ..... साक्षात् त्वं देवि ! दृष्टा प्रियमपरमतः किं पुनः प्रार्थयेत्।।''

जीमूतवाहन की माता शंखचूड़ से जीमूतवाहन का परार्थ के लिए प्राणत्याग का निश्चय करने सम्बन्धी वृत्त सुनकर कहती है कि देवताओं की कृपा से ही जीवित पुत्र का मुखदर्शन सम्भव है– ''सर्वथा देवतानां प्रसादेन जीवतः पुत्रस्य मुखं पश्यामः।''[18] वह दिशा, उपदिशाओं के पालक लोकपालों को सम्बोधित करते हुए प्रार्थना करती है– ''भगवन्तो लोकपालाः । कथमप्यमृतेन सिक्त्वा पुत्रकं में जीवयत।''[19]

शंखचूड़ की शिव के प्रति आस्था है। वह गरूड़ के आने की प्रतीक्षा करते हुए श्मशान की वीभत्सता की तुलना शिवजी के शरीर से करता है –

''प्रतिदिनमहिनाहारेण विनायकाहितप्रीति।
शशिधवलास्थिकपालं वपुरिव रौद्रं श्मशानमिदम्।।''[20]

शंखचूड़ स्वामी की आज्ञा पालन करने से पहले गोकर्णेश्वर (शिवजी के लिंग विशेष) की प्रदक्षिणा करने जाता है– ''यावदहमप्यदूरे भगवन्तं दक्षिणगोकर्ण प्रदक्षिणी– कृत्य स्वाभ्यादेशमनुतिष्ठामि।''[21] शंखचूड़ ज्यों ही वहाँ से प्रस्थान करता है, गरूड़ आ जाता है और नायक के माध्यम से शंखचूड़ की रक्षा हो जाती है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म के विविध देवताओं की उपासना, आराधना एवं नान्दी में गौतम बुद्ध की आराधना होने से धार्मिक समन्वयवाद के मूल्य नाटक में अभिव्यक्त हुए हैं। वर्तमान में भारत में धर्म पर आधारित विविध सम्प्रदायों में परस्पर वैमनस्य की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर हो रही है, जो देश की उन्नति में महत्ती बाधा है। मनु स्मृति में प्रदत्त धर्म के लक्षण के अनुरूप प्रत्येक मानव का आचरण सम्पूर्ण मानव समाज के लिये कल्याणकारी है। अपना इष्ट जो भी हो, वह सम्माननीय है, परन्तु दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार भी उतना ही निन्दनीय है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद, 1/22/18
2. वही, 10/191/2
3. व्यास– महाभारत, 18/5/62
4. कणाद – वैशेषिक सूत्र
5. मनुस्मृति, 6/92
6. वही , 2/12
7- Records of the Budhistic Religion, Page, 163-64 Translated by Takaksu.
8. हर्षवर्धन– नागानन्द, 1/1, 2
9. बाणभट्ट– हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास पृ.78
10. हर्षवर्धन–नागानन्द, पृ.32
11. वही, 1/14
12. वही, पृ. 37, 41
13. वही, पृ. 37
14. वही, पृ. 41, 42
15. वही, पृ. 231
16. वही, पृ. 232
17. वही, 5/39
18. वही, पृ. 198
19. वही, पृ. 227
20. वही, 4/17
21. वही, पृ. 168